परीक्षण का आतंक

जॉन होल्ट

मैं सच्चाई बयान कर रहा हूँ। लगभग सभी शिक्षाविद् परीक्षण को शिक्षा का एक अभिन्न अंग मानते हैं। मैं इससे बिल्कुल सहमत नहीं हूँ– मेरी राय में परीक्षण न तो जरूरी है, न ही उपयोगी, और उसे माफ करना मुश्किल है। परीक्षण से फायदा कम, नुकसान ज्यादा होता हैः उससे सीखने की प्रक्रिया विकृत और भ्रष्ट हो जाती है, रुक जाती है। परीक्षण करने वालों का मानना है कि परीक्षण की तकनीकों में लगातार सुधार हो रहा है और वे अन्त में एकदम दुरुस्त हो जाएगी। शायद ऐसा हो जाए, परन्तु परीक्षण अच्छा हो जाने के बावजूद उसके खिलाफ मेरी आपत्तियाँ बनी रहेंगी। हमारी प्रमुख चिन्ता परीक्षण को बेहतर बनाने की नहीं, बल्कि उसे पूरी तरह हटाने की होनी चाहिए।

यह तो सही है कि कुछ परिस्थितियों में परीक्षण ज़रूरी हो जाता है। अगर कोई वायलिन बजाने वाला संगीत सभा में भाग लेना चाहता है तो उसकी निपुणता जानने के लिए उससे वायलिन बजाकर दिखाने को कहा जा सकता है। अगर कोई व्यक्ति ऐसे लोगों के साथ काम करना चाहता है जो अंग्रेजी नहीं बोलते तो उसे यह प्रत्यक्ष दिखाना पड़ेगा कि वह उन लोगों की भाषा जानता है। अगर वह इमारतों का डिज़ाइन बनाना और उनका निर्माण करना चाहता है तो उसे यह साबित करना पड़ेगा कि उसका बनाया ढांचा गिरेगा नहीं। अगर वह सर्जन बनना चाहता है तो उसे कागज़ पर नहीं, ऑपरेशन टेबिल पर, समर्थ लोगों के समक्ष, कुछ लोगों का ठीक से ऑपरेशन करके दिखाना होगा।

कुछ इसी प्रकार से लोग अपनी प्रगति मापने के लिए अपना परीक्षण खुद करते हैं। टाइपिस्ट अभ्यास द्वारा अपनी गति बढ़ाते हैं। संगीतज्ञ अपने सुरों का अभ्यास करते हैं और मुश्किल हिस्सों को मेट्रोनोम नामक यंत्र के

सामने बजाते हैं। टेनिस के खिलाड़ी दर्जनों बार गेंद को सही कोने में फेंकने का अथक प्रयास करते हैं। हृदय विशेषज्ञ मेंढकों पर ऑपरेशन करके अपनी उंगलियों को तंग स्थानों पर काम के लिए प्रशिक्षित करते हैं। स्केटिंग करने वाले, क्रिकेट के खिलाड़ी, सभी अपने कार्य में दक्ष होने के लिए बार–बार अभ्यास करते हैं। पायलट भी विमान को उतारने का बार–बार अभ्यास करते हैं। समझदार छात्र महत्वपूर्ण जानकारी को फाइल–कार्डो में लगाते हैं जो कि सीखने के तरीकों में सबसे लचीला, प्रभावी और सस्ता तरीका है। संक्षेप में, किसी भी गम्भीर अभ्यास में सीखने वाला लगातार अपनी कुशलता और ज्ञान का परीक्षण करता है। परन्तु स्कूलों में जिस प्रकार का परीक्षण होता है उसका इस तरह के परीक्षणों से कुछ भी लेना–देना नहीं होता।

छात्रों से अक्सर उन गतिविधियों को दिखाने के लिए नहीं कहा जाता जिन्हें उन्होंने अपनी मर्ज़ी से चुना हो। इन गतिविधियों में न तो जान–माल का और न ही किसी संस्था के बर्बाद होने का खतरा होता है। स्कूलों में परीक्षण एकदम अलग कारणों से होते हैं, और आमतौर पर इन कारणों के बारे में हम बहुत ईमानदारी से बात

नहीं करते। लोगों से और अपने आप से भी हम शिक्षक यह कहते हैं कि हम बच्चों का परीक्षण इसलिए करते हैं ताकि हम यह जान पाएं कि उन्होंने क्या सीखा है, जिससे हम सीखने में उनकी और अधिक मदद कर सकें। यह बात पिच्यानवे प्रतिशत गलत है। बच्चों के परीक्षण हम दो प्रमुख कारणों से करते है। पहला यह कि उनको डरा–धमकाकर हम उनसे वह सब करा पाते हैं जो हम चाहते हैं। और दूसरा यह कि हमें बच्चों को पुरस्कार व सज़ा देने का एक आधार मिलता है जिसकी नींव पर यह शिक्षा तंत्र सभी दमनकारी तंत्रों की तरह खड़ा है। परीक्षाओं के भय से बच्चे अपना होमवर्क करते हैं, और परीक्षाओं में अच्छा करने की वजह से ही हम कुछ छात्रों को ईनाम और पुरस्कार दे पाते हैं। समाज की तरह, स्कूल की अर्थव्यवस्था भी लालच और भय पर ही चलती है। परीक्षाएं भय जगाती हैं और लालच को तुष्ट करती हैं।

यह प्रणाली ज़रूरी हो सकती है और शायद इससे बचना भी मुश्किल हो। बच्चे क्या सीखें? हमें इसका निर्णय नहीं लेना चाहिए। मेरी तो यही राय है। हमने जो भी पढ़ाने का निर्णय लिया है उसे क्रियान्वित करने के लिए बच्चों को उनकी सफलता और असफलता के अनुपात में ईनाम और सज़ा देने की बात भी मुझे अटपटी लगती है। परन्तु सच्चाई तो यह है कि सभी स्कूलों में परीक्षण इसीलिए होते हैं। अगर हम सोचते हैं कि परीक्षाएं किसी अन्य कारण से ली जाती हैं तो यह हमारी बेईमानी का द्योतक है।

बहुत से शिक्षकों और छात्रों का भी यह विश्वास है कि चाहे परीक्षाएं बच्चों को डराती हों फिर भी वे उनके कार्य की गुणवत्ता का एक सही मापदण्ड होती हैं। मुझे लगता है कि परीक्षाएं बच्चों को जितना ज्यादा भयभीत करेंगी, वे उनकी सीख को उतना ही कम माप पाएंगी और सीखने को तो उससे भी कम प्रोत्साहित कर पाएँगी। इसके कई कारण हैं। सबसे स्पष्ट और महत्वपूर्ण कारण यह है– जब किसी छात्र को पता चलता है कि उसे परीक्षा के नतीजों पर आंका जाएगा तो उसका ध्यान परीक्षा सामग्री से हटकर परीक्षक की ओर खिंच जाता

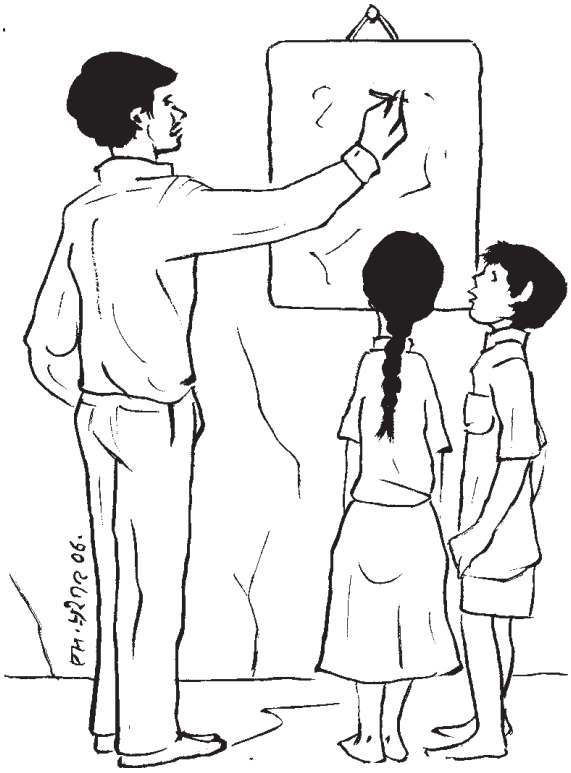

है। अब छात्र के लिए पाठ्यक्रम या उसके अर्थ की बजाय यह चीज़ महत्वपूर्ण हो जाती है कि परीक्षक के मन में क्या है। परीक्षा तब एक खोज नहीं, हाज़िर–जवाबी का खेल बन जाती है। परीक्षक, वह चाहे कोई भी हो, अब एक सहायक नहीं, बल्कि शत्रु बन जाता है।

कुछ वर्ष पहले किताबों की एक दुकान में मुझे मेडिकल छात्रों से सम्बन्धित समाजशास्त्र का एक विस्तृत अध्ययन पढ़ने को मिला। मैं उसे बीच–बीच में से पढ़ने लगा, शायद यह जानने के लिए कि क्या मेडिकल छात्र भी उसी भय से डरते हैं जिससे मेरी पाँचवीं कक्षा के बच्चे डरते हैं, और कि क्या वे भी अपने आपको बचाने के लिए उसी तरह के टालू तरीके अपनाते हैं जैसे अन्य बच्चे अपनाते हैं। उनका भी वही हाल है इसका मुझे जल्द ही पता चल गया। इस अध्ययन के लेखकों ने बहुत से, अलग–अलग स्तर के, मेडिकल छात्रों का इंटरव्यू लिया था। इन छात्रों ने बार–बार बताया कि वे मेडिकल कॉलेज में आने के बाद पूरा दिल लगाकर डॉक्टरी पढ़ना चाहते थे। परन्तु कॉलेज में उनकी लगातार परीक्षाएं होती रही और उन्हें ऐसा लगने लगा कि उनका भविष्य पूरी तरह परीक्षाओं के नतीजों पर निर्भर होगा। जल्दी ही वे डॉक्टरी की बुनियादी पढ़ाई को छोड़कर इम्तहान की तैयारियों में लग गए। कुछ समय बाद वे अपने प्रोफेसरों को आंकने लगे और उन पर लेबल चिपकाने लगे। लेबल शिक्षकों की कुशलता और ज्ञान पर नहीं, बल्कि उनके ''न्यायसंगत'' होने पर आधारित थे। ''न्यायसंगत'' प्रोफेसर वे थे जिनकी परीक्षाओं का पूर्व अनुमान लगाकर विषय की तैयारी की जा सके।

मुझे खुद परीक्षाएं अक्सर फंसाने का एक जाल और परीक्षक एक शत्रु जैसा लगता रहा है– ऐसी स्थितियों में भी जब परीक्षक मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकता था। मेरा एक छात्र है जो पुराने अखबारों और पत्रिकाओं में से खुद करो और जांचों वाली पहेलियों को काट लेता है और कभी–कभी मुझे उनको हल करने की चुनौती देता है। ''ज़रा देखें, आप कितने होशियार है!'' या ''देखें, आप इन्हें कितनी तेजी से कर पाते हैं!'' या ऐसा ही कुछ और। मुझे अचानक लगता है जैसे किसी ने मुझ पर लड़ाई छेड़ दी हो, जैसे कोई मुझे पागल बना रहा हो। अगर वह छात्र मुझ से उन पहेलियों के कुछ सवाल पूछता है– वैसे मैं उसे इसका मौका ही नहीं देता तो मैं अपने आपको यह सोचता हुआ पाता हूँ, ''इसमें चाल क्या है? यह बन्दा आखिर चाहता क्या है? इसके दिमाग में क्या चल रहा है?'' तब मैं एक द्वन्द में फंस जाता हूँ, जैसे शतरंज के खेल में होता है।

अगर परीक्षा एक ऐसा खेल हो जिसमें प्रतिद्वन्दी आपको मात देने की भरसक कोशिश कर रहा हो तो उसको हराने का हर तरीका जायज़ हो जाता है। यही बात आम तौर पर नकल की जड़ में है, खास तौर पर ''अच्छे'' स्कूलों में जहां नकल बहुत प्रचलित है और जहां बहुत सारे सफल छात्र भी इसमें माहिर होते हैं। शिक्षक के सामने, ज्ञान के अभाव में भी, अपना ज्ञान दिखा पाने और नकल के बीच कोई खास अन्तर नहीं है। जो भी हो, जो छात्र घोर दबाव में काम करते हैं वे तो इस अन्तर को नज़र अन्दाज करते ही हैं, बहुत से शिक्षक भी ऐसा करते हैं। जब शिक्षकों को उनके छात्रों के मानक परीक्षाओं में अंकों के आधार पर आंका जाता है तो वे छात्रों के साथ

मिलकर अपने सामूहिक शत्रु का जी–जान से मुकाबला करते हैं। अधिकांश स्कूलों और शिक्षकों का व्यवहार इस बारे में बिल्कुल अनैतिक होता है। मैंने पांचवीं के ऐसे बच्चों को पढ़ाया है जिन्हें पिछली कक्षाओं में अंकगणित में अच्छे अंक मिले थे परन्तु ये बच्चे जोड़ना–घटाना भी ठीक से नहीं जानते थे। फिर परीक्षाओं में उन्हें अच्छे अंक कैसे मिले? जाहिर है कि शिक्षकों ने छात्रों को बहुत रट्टा लगवाया होगा। कई बार मुझसे भी रटवाने के लिए कहा गया है। ''बच्चों की समझ में आए या नहीं, उपयोगी है या नहीं, इसको छोड़ो। बस यह देखो कि परीक्षा में बच्चों के अच्छे नम्बर आएं।'' क्या यह एक तरह की नकल नहीं है?

क्या परीक्षा का जाल होना ज़रूरी है? किसे ईनाम मिले, और किसे सज़ा– जब परीक्षा इस बात को निर्धारित करने लगती है तो वह जाल बन ही जाती है। कौन निर्धारित करेगा? चर्चिल ने हैरो के अपने अनुभवों को इनसे कहीं ज्यादा प्रभावशाली शब्दों में कहा था। उनके अनुसार उन्हें क्या आता था इसे जानने में उनके शिक्षकों की कोई रुचि नहीं थी। उन्हें क्या नहीं मालूम था वे सिर्फ यह पता करना चाहते थे। यह बात सामान्यतः सच है। इसलिए नहीं कि सभी शिक्षक शत्रु होते हैं, बल्कि इसलिए कि यह इसी तंत्र की मांग है जहां हमेशा भेड–बकरियों को छांटकर अलग कर दिया जाता है। अब ज़रा परीक्षक की कठिनाइयों को लें। जिस छात्र ने विषय को थोड़ा भी पढ़ा हो वह उसके बारे में घण्टों तक लिख सकता है। उदाहरण के लिए, आठवीं के बाद मैंने अमरीकी इतिहास को छुआ तक नहीं है और में उसे लगभग भूल चुका हूँ। इस विषय के बारे में मुझे जो कुछ भी मालूम है उसे मैंने इधर–उधर की किताबों में पढ़ा है जिन्हें इतिहास की पुस्तकें कहना गलत होगा। तब भी अगर मुझसे अमरीकी इतिहास के बारे में लिखने के लिए कहा जाए तो मैं बहुत से पन्ने भर डालूंगा, शायद एक पुस्तक या कई पुस्तकें लिख डालूं। तब आप ही बताएं, भला कोई मेरे ज्ञान को, या इतिहास के किसी छात्र के ज्ञान को, एक घंटे या तीन घण्टे में कैसे आंक सकता है? यह एक असम्भव कार्य है। अगर शिक्षक एक ऐसी परीक्षा देता है जिसमें छात्र अपने ज्ञान को दर्शा सकें, तो जल्द ही समय खत्म हो जाएगा और तब भी छात्रों का बहुत कुछ लेखन शेष बचा रहेगा, और शिक्षक को मूल्यांकन के दौरान झक मारकर सभी छात्रों को समान अंक देने होंगे क्योंकि उसके पास और कोई तरीका होगा ही नहीं। पर यह बात उसके अधिकारियों को नहीं पचेगी। हरेक स्कूल में बच्चों के बीच अन्तर पैदा करना ही शिक्षक का काम है– क्योंकि हरेक छात्र तो हार्वर्ड विश्वविद्यालय जा नहीं सकता– इसलिए शिक्षक का काम ऐसे प्रश्न पूछना होता है जिनका कम से कम कुछ छात्र तो उत्तर न दे पाएं। संक्षेप में, चर्चिल के शिक्षकों की तरह ही उसका काम भी बच्चों की अज्ञानता को बाहर लाना है ताकि किसे पुरस्कार मिले और किसे सज़ा इसका वह ''निष्पक्ष'' रूप से निर्णय ले सके।

परीक्षाओं के खिलाफ मुझे अन्य आपत्तियाँ भी हैं। परीक्षाओं से उन छात्रों को ही सजा मिलती है जो धीरे काम करते हैं। परीक्षाएँ उनका ही साथ देती हैं जो अनुमान लगाने में चतुर होते हैं, जो हिसाब में तेज होते हैं। परन्तु जो छात्र अपने काम को सावधानी से पूर्ण रूप में करते हैं, परीक्षाएं उनके पक्ष में नहीं होती। सबसे ज्यादा नुकसान उन छात्रों का होता है जो परीक्षाओं के बारे में फिक्र करते हैं। भय के कारण ऐसे छात्र परीक्षाओं में अपने ज्ञान को पूरी तरह प्रदर्शित नहीं कर पाते हैं। ऐसी हरेक परीक्षा जिसमें वे

फेल होते हैं उनके दिल में अगली परीक्षा के प्रति एक खौफ पैदा कर देती है। ऐसे अनगिनत छात्रों के बारे में परीक्षाएं भ्रम पैदा करती हैं या बेकार साबित होती हैं जो पास होने की कोई कोशिश ही नहीं करते। ऐसे बहुत से छात्र हमारे शहरों में हैं। अक्सर व जानबूझ कर फेल होते हैं, शायद अपनी इज़्जत बचाने के लिए, शायद अपने पालकों को दुखः पहुँचाने के लिए, या फिर उस तंत्र से लड़ने के लिए जिसे वे नफरत करते हैं।

हो सकता है कि जब हमें लगता है कि परीक्षाएं सही काम कर रही हैं तभी वे सबसे अधिक नुकसान पहुँचाती हैं। मैं अक्सर अपने छात्रों से परीक्षाओं और मूल्यांकन के बारे में लम्बी चर्चाएँ करता हूँ। उनमें से कई बुद्धिमान और सफल छात्र प्रतिष्ठित कॉलेजों में जाने की तैयारी में हैं। आश्चर्य की बात यह है कि उनमें से बहुत से छात्र इस तंत्र को, जिसके खिलाफ कभी वे लड़ते थे, शिकायत करते थे, बचाने की बात करते हैं। वे गुस्से में उत्तेजित होकर कहते हैं, ''अगर परीक्षाएँ नहीं होगी और हमें नहीं आंका जाएगा तो हमें कैसे पता चलेगा कि हम कुछ सीख रहे हैं या नहीं? हम ठीक कर रहे हैं या नहीं?'' यह सुनकर मुझे बहुत दुखः होता है। मुझे दो–तीन वर्ष के उन बच्चों की याद आती है जो लगातार अपनी बोली की तुलना अपने आसपास के लोगों की बातचीत से करते रहते हैं। मुझे पांच–छह वर्ष के बच्चे याद आते हैं जिन्होंने खुद पढ़ना सीखा था, पन्ने के हरेक नए शब्द को खुद समझा था। वे जो भी सीखते थे उसकी पिछली बातों से लगातार तुलना करते थें फिर मुझे पांचवीं के वे बच्चे याद आते हैं जो अंकगणित के पर्चे थमाकर मुझसे चिन्तित भाव में पूछते थे, ''क्या यह ठीक है?'' और जब मैं उनसे पूछता था, ''तुम्हारा क्या विचार है?'' तो वे मेरी तरफ ऐसे घूरने लगते जैसे मैं कोई पागल होऊँ। उनके सोचने से क्या कोई फर्क पड़ता था? अक्सर सही बातों का वास्तविकता और समझदारी से कुछ लेना–देना नहीं होता। शिक्षक के मुँह से निकली बात ही सही होती है। ''सही'' ज्ञान करने का भी एक ही तरीका होता है– उसे शिक्षक से पूछो। स्कूलों में बच्चों के साथ जो सबसे बड़ी ज्यादती हम करते हैं वह यह है कि हम उन्हें अपने काम का खुद मूल्यांकन करने का मौका ही नहीं देते। इससे बच्चों की खुद निर्णय लेने की और अपने निर्णयों में यकीन करने की शक्ति नष्ट हो जाती है।

जॉन होल्ट द्वारा अंग्रेजी में लिखित ''अंडर अचिविंग स्कूल'' के हिंदी संस्करण ''असफल स्कूल'' से साभार। असफल स्कूल का प्रकाशन एकलव्य ने किया है।

जॉन होल्टः दुनिया के जाने माने शिक्षविद्। होल्ट काफी घुमक्कड़ प्रवृति के इंसान थे। शिक्षा होल्ट का शौक था। उन्होंने अपने इस शौक को ही अपना पेशा बनाया।

1964 में उनकी पहली किताब हाऊ चिल्ड्रन फेल छपी। यह उनकी डायरी का एक अंश थी। इस डायरी में वे बच्चों के करतबों और हरकतों को दर्ज़ करते जाते थे। इस किताब ने शिक्षा जगत में तहलका मचा दिया।

असफल स्कूल दस्तावेज विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र, उदयपुर में प्रारंभ किए गए पिटारा से प्राप्त किया जा सकता है।

मूल्यांकन का मूल्यांकन

डेविड ऑसबरॉ
अनुवादः रोहित धनकर

शिक्षण की मूल्यांकन प्रक्रिया ऐसा आइना है जिसमें उस शिक्षण–प्रणाली के पीछे रही सोच की गंभीरता या छिछलेपन का अक्स देखा जा सकता है। भारतीय शिक्षा–व्यवस्था की मौजूदा मूल्यांकन प्रणाली को डेविड 'घनचक्कर की पहेली' योजना कहते हैं। इसकी व्यावहारिक परिणति इस वृतान्त में उजागर होती है। ग्रेडगाइंड महाशय कहते है, "हमें इन लड़कियों को तथ्यों के अलावा कुछ नहीं पढ़ाना चाहिए।" परिणामस्वरूप लुइसा तथ्यों की शिक्षा प्राप्ति व असफल वैवाहिक जीवन के बाद अपने पिता से कहती है, "आपने यदि मुझे अपनी कल्पनाशक्ति का कुछ भी अभ्यास करने दिया होता तो मैं आज लाखों गुणा ज्यादा बुद्धिमान होती।" यह लेख 1980 के आसपास लिखा गया लगता है। पर इसमें न्यूनतम अधिगम स्तर की पदचाप साफ सुनाई दे रही है। और यह इसी खतरे की तरफ इशारा करता हुआ लगता है।

मूल्यांकन को शीघ्रातिशीघ्र हमारे शिक्षा–तंत्र की खिड़कियों से बाहर फेंक देना चाहिए। मूल्यांकन के हर पहलू को, मूल्यांकन शोध को, कार्यान्वयन को, मूल्यांकनकर्त्ताओं के प्रशिक्षण तथा कार्यशालाओं को, अधिकाधिक दुष्ट मूल्यांकन विधियों की ईजाद में लगे मूल्यांकन भक्तों से भरे बड़े–बड़े भवनों को अर्थात मूल्यांकन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को, इसके संपूर्ण साज–सामान को ठीक उसी तरह बाहर फेंक देना चाहिए जैसे उन्नीसवीं सदी के लंदन में शयनागारों की खिड़कियों से चेम्बरपोट्स (मूत्रपात्र) खाली किए जाते थे।

घनचक्कर की पहेली योजना

शाला शिक्षण के स्तर में विगत तीस वर्षो से चल रही सतत् गिरावट के कारणों में मूल्यांकन सर्वाधिक शक्तिशाली कारण रहा है। मूल्यांकन अपनी अंक प्रदान करने की प्रक्रिया को अधिकाधिक वस्तुनिष्ठ बनाने की सनक तथा बालकों की कोमल बुद्धि को परम अनावश्यक जानकारी के टुकड़ों से भरने की अनबुझ प्यास के कारण एक भारी भरकम 'घनचक्कर की पहेली योजना' बन कर रह गया है। (प्रश्नों के कुछ उदाहरण हैः स्वेज नहर किसने बनाई? 19 नवम्बर को सूर्य कहां होता है? हेर कौन था? उसके उपकरण के बारे में क्या जानते हो?) इन सनकी पहेलियों के विजेताओं को भारतीय प्रशासनिक सेवाओं के माध्यम से स्वर्ग का निःशुल्क प्रवेश–पत्र मिलता है। दूसरे स्थान पर रहने वालों में तकनीकी संस्थानों तथा उच्च श्रेणी के व्यवस्थापकीय पदों के माध्यम से शोधन–स्थानों का प्रवेश पत्र मिलता है। बाकि लोगों को बिना स्वर्ग या शोधन–स्थान पहुंचे चलते रहने की अनुमति मिलती है।

लेकिन कैसे कहा जा सकता है कि इस दुःखान्तिका का मुख्य खलनायक मूल्यांकन ही है। मूल्यांकन से तो बालकों की योग्यताओं और उपलब्धियों का पता चलता है। यह तो छात्रों की कार्य क्षमता को सही–सही नापने का पैमाना प्रस्तुत करता है। यह तो एक सशक्त अभिप्रेरण है जो बच्चे को अधिकाधिक अध्ययनशील बनाता है। ये मूल्यांकन विशेषज्ञों के तर्क हैं। मूल्यांकन के इन तथा कथित फायदों की जांच शीघ्र ही की जा सकती है।

पहली बात, मुश्किल से ही कोई परीक्षा बालकों की योग्यताओं व उपलब्धियों का, इन शब्दों के सही अर्थो में ठीक–ठीक चित्र उपस्थित कर पाती है। परीक्षा केवल छात्र की स्मरण शक्ति की ही जांच करती है, न कि इसकी शैक्षणिक उपलब्धियों की ओर सृजनात्मकता की। परीक्षा में छात्र की छोटी–छोटी असम्बद्ध सूचनाओं को रटने की शक्ति के अलावा और किसी भी योग्यता की जांच नहीं होती तथा यह असम्बद्ध सूचनाओं का समूह भी विद्यालय सत्र की समाप्ति के तुरन्त बाद दिमाग से साफ हो जाता है। फिर तथ्यों का एक नया समूह रटने के लिए दिया जाता है। साल दर साल यही होता रहता है और अंत में बहुत ही कम तथ्य दिमाग में रह पाते है। इसकी सत्यता की जांच प्रथम वर्ष बी.ए. के किसी छात्र से दसवीं विज्ञान के कुछ प्रश्न पूछकर की जा सकती है।

दूसरी बात, अधिकतर योग्य साक्षात्कारकर्ता इससे सहमत

होंगे कि सैकण्डरी, पी.यू.सी. या बी.ए. पास होना कार्यक्षमता के संकेतक के रूप में बहुत ही कम उपयोगी होता है। इसका कारण भी यही है कि परीक्षा केवल रटने की योग्यता की जांच करती है तथा रटने की योग्यता किसी भी काम को समझदारी से कर सकने की योजनाओं में से एक नहीं है।

तीसरी बात, परीक्षा निकृष्टतम अभिप्रेरण है, क्योंकि यह शीघ्र ही एक मात्र अभिप्रेरण बन जाती है। विद्यालयों में झांकने मात्र से इसका पता चल जाता है। देखिए अध्यापक व छात्रों की उन विषयों में कितनी रूचि है, जिनकी परीक्षा नहीं होती। उदाहरण के लिए दक्षिण भारतीय विद्यालयों में हिन्दी को ही ले लें। फिर भी ऐसा नहीं है कि मूल्यांकन पर आक्रमण के यही समस्त कारण हों। मूल्यांकन इनसे भी अधिक गंभीर अपराधों के लिए उत्तरदायी हैं। इसने शिक्षा तन्त्र के हर विभाग को विषाक्त कर दिया है। पाठ्यक्रम को, पाठ्यपुस्तकों को अध्यापन को, अध्यापकों को और यहां तक कि बालकों को भी।

मूल्यांकन ने पाठ्यक्रम को कैसे विषाक्त कर दिया है। पिछले तीस वर्षो से धीरे–धीरे, पर लगातार, इस बात पर अधिकाधिक बल देकर कि वे सब विद्याएं जिनकी परीक्षा हो, अधिक से अधिक वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन योग्य होनी चाहिए। किसी भी सार्थक शिक्षातंत्र में ऐसे बहुत क्रियाकलाप होते हैं जो वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन के ढ़ांचे में नहीं समाते। ये सब क्रियाकलाप धीरे–धीरे पाठ्यक्रम से निकाल दिए गए हैं क्योंकि उनकी परीक्षा वस्तुनिष्ठ अध ाार पर बहुत कठिन हैं परिणाम स्वरूप अब हम एक ऐसी दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में है जहां यह समझा जाता है कि जिस विद्या की परीक्षा न हो सके, उसे पढ़ाना ही नहीं चाहिए।

पाठ्येत्तर क्रियाकलाप

इस प्रकार शैक्षणिक दृष्टि से महत्वपूर्ण व आनंदप्रद बहुत से क्रियाकलापों को नवीं व दसवीं कक्षाओं में अनिवार्यतः तथा नीचे की कक्षाओं में साधारणतः पाठ्यक्रम से निकाल दिया जाता है। उदाहरण के लिए कला, हस्तशिल्प, संगीत, विचार–विमर्श, लकड़ी का काम, सर्जनात्मक लेखन, कविता (पाठ्यपुस्तकों में आई कविताओं को छोड़कर) आदि इन क्रियाकलापों में से कुछ हैं। यदि ये विधाएं किसी प्रकार पाठ्यक्रम में रह भी जाएं तो उनको महत्व नहीं मिलता। अधिक से अधिक इनको हॉबी माना जाता है। पाठ्यक्रम का अभिन्न व अनिवार्य अंग इनको कभी नहीं माना जाता। यदि शिक्षा का उद्देश्य सम्पूर्ण व सुखी मानवों का निर्माण है, जो विद्यालय छोड़ने के बाद समाज को भी कुछ दे सकें तो ये विद्याएं अति महत्वपूर्ण हैं। यह सभी शिक्षाशास्त्री स्वीकार करते हैं।

इसी प्रकार मूल्यांकन ने पाठ्यपुस्तकों को भी बर्बाद कर दिया है। आज पाठ्यपुस्तक कुछ तथ्यों का संकलन मात्र रह गई है, जिसे बालकों को रटना है। उदाहरण के लिए विज्ञान की पाठ्यपुस्तक के एक पृष्ठ पर मेंढक से संबंधित ये तथ्य हो सकते हैं:

मेंढक के चार टांगें होती हैं।
उसके एक लंबी जीभ होती है।
वह छोटे कीड़े–मकोड़ों को पकड़ता है।
सामने के पृष्ठ पर अभ्यास प्रश्न होंगे
मेंढ़क के ... टांगे होती हैं।
इसकी एक लम्बी ... होती है।
वह छोटे ... को पकड़ता है।

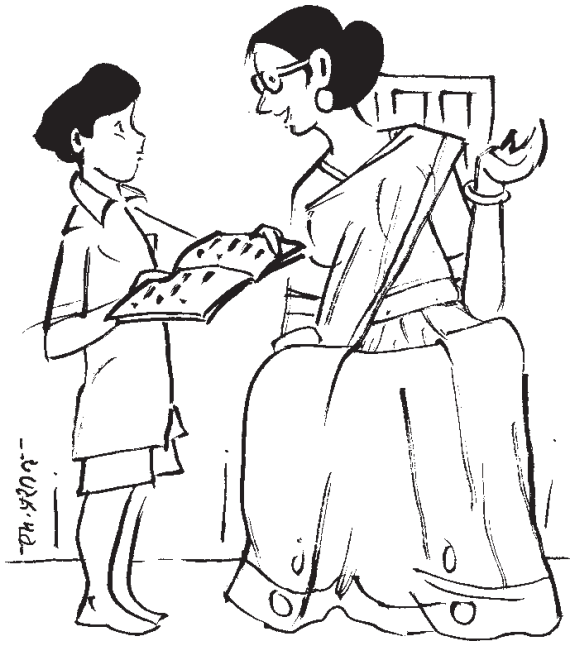

खुले प्रश्नों की अनुमति ही नहीं है। क्योंकि बच्चे अलग–अलग उत्तर दे सकते हैं जिससे अंक प्रदान करना सरल नहीं होगा। जैसा कि ग्रैडगाइंड महाशय (जो बहुत व्यवहारिक व्यक्ति थे) कहते हैं, ''हमें इन लड़कियों को तथ्यों के अलावा कुछ नहीं पढ़ना चाहिए। परिणाम स्वरूप लुइसा तथ्यों की शिक्षा प्राप्ति व असफल वैवाहिक जीवन के बाद अपने पिता से कहती है, ''पिताजी यदि मुझे अपनी कल्पना शक्ति का कुछ भी अभ्यास करने दिया गया होता तो मैं आज लाखों गुणा ज्यादा बुद्धिमान होती।'' और इतना ही अधिक बुद्धिमान हमारे बच्चे होते।

मूल्यांकन ने अध्यापन को भी बर्बाद कर दिया है। कल्पना करिए कि विश्वविद्यालय का कोई अध्यापक पाठ्यक्रम में आये किसी लेख के बारे में कुछ प्रांसगिक तथ्य बताने लगा है। विद्यार्थी उससे यही पूछेंगे, ''सर, क्या यह परीक्षा में आएगा?'' और यह अनुभव विश्वविद्यालय के किसी भी अध्यापक को हो सकता है।

इस मूल्यांकनाभिमुख प्रवृति का परिणाम यह है कि बच्चों के माता–पिताओं, छात्रों और अध्यापकों के जीवन का मात्र एक ही लक्ष्य रह गया है, मूल्यांकन। यदि किसी भी क्रियाकलाप में मूल्यांकन का यह मसाला न हो तो अध्यापक के लिए यह पढ़ा पाना कठिन होता है, क्योंकि बच्चों की उसमें रुचि नहीं होती और उनके माता–पिता ऐसे अध्यापक से गुस्सा होते हैं। ऐसी स्थिति में एक अध्यापक को विचार मात्र में ही एक चिढ़ा हुआ पिता कहता सुनाई देगा, ''यह अध्यापक कर क्या रहा है? क्यों समय बर्बाद कर रहा है? इसको चाहिए बच्चों का ध्यान अध्ययन में लगाएं।'' अध्ययन का अर्थ उसकी भाषा में शिक्षा नहीं है, बल्कि पाठ्यपुस्तकों की रटाई तथा परीक्षा है, इसके अलावा कुछ नहीं। यही कारण है

कि अच्छा अध्यापन बालकों को सर्जनात्मक व जिज्ञासु बुद्धि प्रदान करते हुए शिक्षित करना असम्भव हो गया है।

मूल्यांकन ने छात्रों को बर्बाद कर दिया है। इसलिए ही नहीं कि उपरोक्त कारणों, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों, अध्यापन व अध्यापकों का उन पर बहुत प्रभाव पड़ता है बल्कि इसलिए भी कि बालकों को भी मूल्यांकन की छूत लग गई है। अब उनके लिए एक ही अभिप्रेरण शक्ति रह गई है। परीक्षा में अधिक अंक पाना उनके पास पाठ्यपुस्तकों के अलावा किसी भी क्रियाकलाप के लिए समय नहीं है। जिन क्रियाकलापों का अधिक अंक प्राप्त करने में कोई योगदान न हो, वे नापसन्द किए जाते हैं और ठुकरा दिए जाते हैं।

यही कारण है कि हमारे विद्यालय शिक्षण में किसी भी महत्वपूर्ण गुणात्मक सुधार की तब तक संभावना नहीं है जब तक कि शिक्षा तंत्र के गले में कसता हुआ मूल्यांकन का फन्दा काटा न जाए तथा विद्यालयों, पाठ्यपुस्तकों, अध्यापकों व छात्रों को इस बोझ से मुक्त न कर दिया जाए। जब वे इस बोझ से मुक्त हो जाएंगे तभी शिक्षा के लिए अधिक महत्वपूर्ण क्रियाकलापों में ईमानदारी व निडरता से रूचि ले पाएंगे।

डेविड ऑसबरॉ

डेविड ऑसबरॉ एक अद्भूमत शख्सियत थे– गर्मजोशी से भरे जोशीले, रचनात्मक व्यक्ति और करिश्माई शिक्षक। पढ़ाने के प्रति उनका जबर्दस्त मोह था। डेविड ने कर्नाटक के कोलार जिले में एक स्कूल प्रारंभ किया। नीलबाग का पूरा प्रयोग, डेविड ऑसबरॉ की, लीक से हटी जिंदगी की, कहानी जैसी ही है। शायद स्वतंत्र भारत में, गांव के बच्चों को, विश्व स्तर की उम्दा और क्वालिटी शिक्षा देने का यह अपने जैसा पहला प्रयास था।

नीलबाग में पढ़ाई के साथ–साथ बच्चे मिट्टी, लकड़ी और तमाम हस्तकलाएं और कुशलताएं सीखते।

इस स्कूल की मूल अवधारणा विभिन्न दर्शनों से ली गई थी, लेकिन इसका मूल स्वरूप, विशुध्द रूप से डेविड ऑसबरॉ का था, जो अपने आप में अनूठा था।

डेविड जन्म से अंग्रेज, वर्ण से भारतीय और मिजाज से विश्व नागरिक थे।

यह लेख दिगंतर जयपुर द्वारा प्रकाशित ''शैक्षिक विमर्श'' के अंक–अगस्त सितंबर 1998 से साभार।

पास और फेल के चक्कर में फंसी शिक्षा

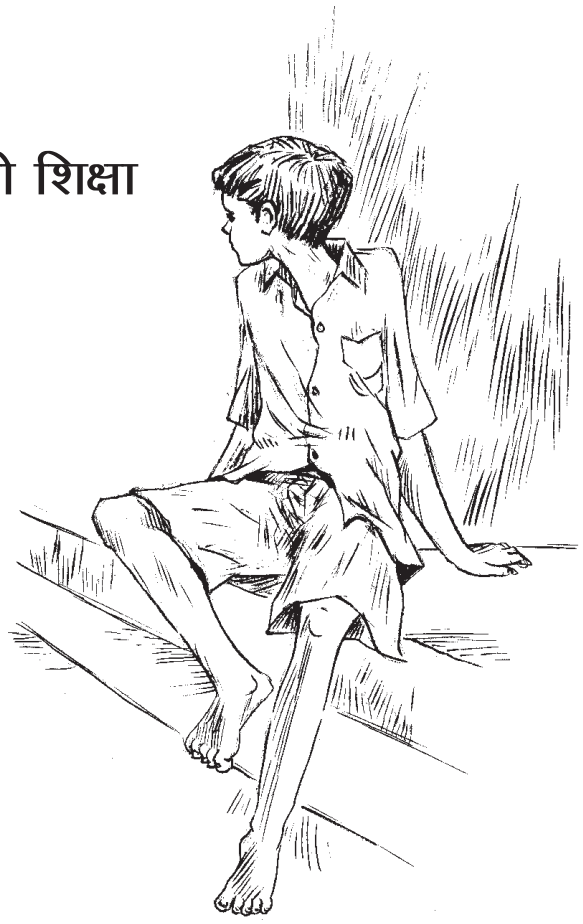

के.आर.शर्मा

माहौल परीक्षा का है। छात्र–छात्राओं के चेहरे बुझे–बुझे से, डरे–डरे से हैं। एक अजीब सी दहशत व्याप्त हैं। साल भर की पढ़ाई के बाद तो उनमें आत्मविश्वास का सैलाब उमड़ना चाहिए, किंतु वो असहज हो चले हैं। छात्र–छात्राओं के चेहरों पर तनाव स्पष्ट झलक रहा है। इतना ही नहीं परीक्षा की वजह से चिंता, तनाव, असहजता उनके परिवार वालों में भी व्याप्त हैं। जरा परीक्षा स्थल का नजारा देखें– साल भर की पढ़ाई (?) की ढाई–तीन घंटे में परख होने वाली है। परीक्षा हाल के बाहर पुलिस वालों का पहरा! सवाल इस बात का कि परीक्षा स्थल पर पुलिस वालों का क्या काम? इतना ही नहीं, परीक्षा में पूछे जाने वाले प्रश्न–पत्र भी पुलिस थाने में रखे हैं, जो निर्धारित समय पर परीक्षा स्थल पर लाए जाते हैं। किसी भी शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य छात्रों का मूल्यांकन करना होता है कि उन्होंने सबक ठीक से सीखे हैं या नहीं। लेकिन यह कैसी विडंबना है कि यह परीक्षा शिक्षा तंत्र में और समाज में हड़कंप मचा देती है। परीक्षा हेराफेरी, बेईमानी, आंतक और हिंसा का पर्याय बन चुकी है। परीक्षा शिक्षकों की वेतन वृध्दि रूकवा सकती है, उनके स्थानांतरण करवा सकती है, परिक्षार्थियों को जेल भिजवा सकती है और पुलिस वालों को बंदूक चलाने के लिए बाध्य कर सकती है। जिन छात्रों के पास कलम होनी चाहिए उनको हथियार रखने के लिए प्रेरित कर सकती है। हर साल ऐसे दु:खद समाचार बनते हैं कि परीक्षा में फैल होने पर कई छात्र–छात्राएं आत्महत्या तक कर डालते हैं। परीक्षाएं जिस मकसद से होती है

उसकी मूल भावना तो परिलक्षित होती ही नहीं बल्कि परीक्षा तो अविश्वास की बुनियाद पर टीकी हुई है। इस अविश्वास को पुख्ता करने के लिए जो गोपनियता बरती जाती है वो अपने आप में एक कलंक ही है। ऊपर से नीचे तक कहीं भी देख लें, परीक्षा की प्रक्रिया को हर कोई शक की निगाह से देखता है। परीक्षा का ताना–बाना इस प्रकार से बुना जाता है कि हर कोई एक दूसरे पर अविश्वास करें और अविश्वास के चलते परीक्षा संपन्न हो।

दरअसल परीक्षा के चक्कर में ही पूरा शिक्षा तंत्र अपना समय बरबाद कर देता है। समाज में तथाकथित समझ बिठा दी जा चुकी है कि परीक्षा ही सब कुछ है। परीक्षा का मूल मकसद तो यह भी होना चाहिए कि बच्चे ने जो गलतियां की हैं उनको सुधारने का मौका मिले। यानेकि छात्र को एक प्रकार से फीडबैक मिले कि उसने जो परीक्षा में प्रश्न–पत्र को हल किया है उसमें क्या बेहतर किया और क्या गड़बड़ की है।

शिक्षा और परीक्षा के सबंध में जॉन होल्ट के विचार को नजरंदाज नहीं किया जा सकता। जॉन होल्ट सफलता और असफलता को एक व्यापक दायरे में देखते हैं। अपने द्वारा लिखी पुस्तक **हाउ चिल्ड्रन फैल** यानेकि **बच्चे असफल कैसे होते हैं?** में होल्ट कहते हैं कि स्कूल जिन बच्चों को सफल घोषित कर देते हैं वे सच्चे अर्थों में असफल ही रह जाते हैं। और यह असफलता एक–दो–चार बच्चों में ही नहीं बल्कि अनगिनत बच्चों की सामूहिक असफलता हैं। बच्चे सफल होकर भी असफल इन अर्थों में हो जाते हैं क्योंकि उनकी सीखने–समझने की और रचने की नैसर्गिक क्षमताओं का क्षरण हो जाता है। बच्चों की असफलता में होल्ट जोड़ते हैं कि स्कूल उन्हें डराना सिखाते हैं। स्कूली माहौल से बच्चे ऊबने लगते हैं। तथा स्कूल में जो कुछ भी पढ़ाया जाता है उससे बच्चे असमंजस में पड़ जाते हैं। होल्ट कहते हैं कि जिस असफलता, निराशा और डर के दुष्चक्र में बच्चा फंसा और उससे यदि नहीं उबर पाता है तो मैं उस बच्चे का कोई भविष्य नहीं देख पाता हूं। होल्ट सीखने की पूरी प्रकिया को एक स्वतंत्र और उन्मुक्त वातावरण में देखते हैं। सीखने में बच्चे की असफलता सचमुच एक शिक्षक और स्कूल की ही असफलता है।

विद्यार्थी ने कक्षा में क्या सीखा है, संबंधित कक्षा की विषयवस्तु को विद्यार्थी ने किस हद तक आत्मसात कर पाया है और शिक्षक ने जो मेहनत की है वह विद्यार्थी के मन मस्तिष्क में किस हद तक पंहुच पाई है इसका आकलन तो होता ही नहीं। दरअसल परीक्षा केवल विद्यार्थी की ही नहीं बल्कि शिक्षक की भी होती है। लेकिन परीक्षा को लेकर खींचातानी मची रहती है। हमारा समाज शिक्षा तंत्र, शासन, प्रशासन हर कोई यह सब स्वीकार कर चुका है कि परीक्षा के दौरान नकलबाजी तो होनी है। प्रश्न–पत्र आउट हो सकते हैं। उत्तरपुस्तिकाओं की जांच के दौरान हेराफेरी हो सकती है। अतः इनसे निपटने की तैयारी की जाती है। लेकिन सब तैयारियां

अपनी जगह धरी रह जाती है। ऐसा लगता है कि इस तथाकथित परीक्षा के बेहतर विकल्पों पर कोई सोचना नहीं चाहता है। शिक्षा विभाग में ऊंचे ओहदों पर बैठे अधिकारी भले ही सैद्धांतिक तौर पर यह मान लें कि वर्तमान परीक्षा व्यवस्था में काफी गड़बड़ है। पर उस गड़बड़ को दूर करने की दिशा में कोई सार्थक पहल होती नहीं दिखती। सच तो यह है कि बोर्ड की परीक्षा में सबसे ज्यादा धांधलियां होती है। कई शिक्षक और लोग–बाग इस बात को बड़े ही हास्यास्पद रूप में कहते हैं कि बोर्ड की परीक्षा तो 'बोर्ड' पर होती है। यह समझ से परे हैं कि बोर्ड की परीक्षा से क्या हासिल होता है? जबकि बोर्ड की परीक्षा में पूरा शिक्षा विभाग का अमला और स्थानीय प्रशासन काफी सारा समय बरबाद करता है।

असल में परीक्षा ऐसी होनी चाहिए कि जो छात्रों को फीडबैक दे सकें कि उन्होंने क्या सीखा है। और जो गलतियां की हैं उनको सुधारने के मौके मिल सकें। हमारे यहां पर ऐसी मांगें भी छात्रों की ओर से उठी कि उनको उत्तरपुस्तिकाएं दिखाई जाए। लेकिन सूचना के अधिकार के बावजूद इस मांग को सिरे से ही खारिज कर डाला गया। परीक्षा के माध्यम से छात्रों को इस बात का पता लगना चाहिए कि आखिर कहां पर गलत हैं, कमजोर हैं, या किस तरह की गलती उनने की है वगैरह। आज पूरे शिक्षा तंत्र पर परीक्षा हावी हो चुकी है। शिक्षा संस्थानों में साल भर जो भी शिक्षण होता है वह सीखने के संदर्भ में न होते हुए परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करने के लिए होता है। कमोबेश शिक्षक भी इसी उलझन में रहता है कि उसकी कक्षा का नतीजा अच्छा आए ताकि उसकी नौकरी पर कोई आंच न आए।

परीक्षा में नकल के एक से एक नायाब तरीके खोज लिए जाते हैं। परीक्षा एक तरह से चोर और सिपाही का एक खेल बनकर रह गई है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि बोर्ड परीक्षा की बागडोर तो पुलिस और शिक्षा प्रशासन के हाथ में आ जाती है। और शिक्षक की भूमिका गौण हो जाती है। हांलाकि अभी तक नकल करने और परीक्षा में पास होने के लिए कोई बुकलेट बस अड्डों या रेल्वे प्लेटफार्मों पर बिकते नहीं देखी गई है। दरअसल ऐसा करने की जरूरत भी क्या है। नकल, हेराफेरी करने के तमाम अचूक नुस्खे अलिखित रूप से ही प्रसारित हो जाते है। परीक्षा संपन्न होने के बाद उत्तरपुस्तिकाओं के मूल्यांकन का काम शुरू होता है। यदि आप किसी मूल्यांकन केंद्र पर उत्तरपुस्तिकाओं का मूल्यांकन करते देख लें तो इस परीक्षा से आपका विश्वास ही उठ जाए। कुल मिलाकर परीक्षा एक यांत्रिकीय विधि से होती है। और एक दिन ऐसा आता है कि परीक्षा के नतीजे घोषित हो जाते हैं। सच पूछें तो परीक्षा मानवीय मूल्यों, भावनाओं संवेदनाओं जैसी चीजों से कोसों दूर रहती है। परीक्षा अच्छे–बुरे, ईमानदार–बेईमान, बुध्दिमान–कमजोर विद्यार्थियों में फर्क नहीं कर पाती है।

क्या हो मूल्यांकन के आधार?

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 की अनुशंसाएं

नेशनल करिकुलर फ्रेमवर्क –2005 में स्कूली शिक्षा के संदर्भ में मूल्यांकन पर अनुशंसाएं पेश की है। परीक्षा कैसी हो? मूल्यांकन के क्या आधार हो? वर्तमान मूल्यांकन प्रणाली में क्या खामियां हैं? इन सब बातों को छूने की कोशिश की गई है इस दस्तावेज में।

भारतीय शिक्षा के संदर्भ में परीक्षा बच्चों और शिक्षकों के लिए तनाव और चिंता पैदा करती है। परीक्षा का हौवा इस कदर होता है कि इससे कक्षा शिक्षण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। यह एक चिंता का विषय है कि अध्ययन–अध्यापन को सार्थक और आनंददायक बनाने के प्रयासों में परीक्षा आड़े न आए। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था पूरी तौर पर परीक्षा केंद्रित बन चुकी है।

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि मूल्यांकन और परीक्षा ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया का हिस्सा बन सकती है।

मूल्यांकन क्यों?

शिक्षा का संबंध सार्थक जीवन से है। मूल्यांकन का मतलब इस बात से होना चाहिए कि उससे पाठ्यक्रम और पढ़ने–पढ़ाने की प्रक्रियाओं को बेहतर बनाने में मदद मिल सके। इस नजरिए से मूल्यांकन की वर्तमान प्रक्रिया खरी नहीं उतरती। इस तरह की परीक्षा व्यवस्था किसी छात्र की योग्यताओं के आकलन करने में सक्षम नहीं है।

यदि हमको सचमुच बच्चों की क्षमताओं का आकलन करना है तो शिक्षकों को तैयार करना होगा। इस तैयारी का मतलब यह है कि उनको मूल्यांकन के ऐसे गुर सिखाए जाएं जिससे तनाव और चिंता को दरकिनार करके बच्चे की क्षमताओं को जांच सकें। एक शिक्षक किस तरह से मूल्यांकन करे कि उससे यह समझा जा सके कि उनका छात्र किस क्षेत्र में कैसा प्रदर्शन कर रहा है। आकलन का मकसद निश्चित तौर पर शिक्षा की प्रक्रिया और शिक्षण सामग्री को बेहतर बनाना है। और विभिन्न स्कूलों के संदर्भ में परीक्षण करना है कि किस सीमा तक छात्रों की क्षमताओं का विस्तार हो रहा है। इसके अलावा रोजमर्रा की गतिविधियों और अभ्यासों का आकलन प्रभावी ढंग से किया जा सकता है।

यह दस्तावेज कहता है कि आकलन के तरीकों में इस बात को भी जोड़ा जाए कि छात्रों को उनकी तैयारी पर फीडबैक दे सकें जिससे कि वे बेहतर कर सकें। इतना ही नहीं आकलन के माध्यम से बच्चों के माता–पिता को भी यह संदेश जा सके कि उनका बच्चा किस तरह की तैयारी कर रहा है। दरअसल मूल्यांकन प्रणाली में प्रतियोगिता को नकारना चाहिए। अगर शिक्षा को बेहतर बनाना है तो छात्रों को ओहदे में बांटने और उनमें हीन भावना पैदा करके नहीं किया जा सकता।

जिन बच्चों को अक्षर ज्ञान में ही दिक्कतें आती हैं या गणित की मूलभूत प्रक्रियाओं मसलन गणितीय गणना और दशमलव आदि मामलों में समस्या आती है तो बच्चों को इनमें सक्षम बनाने की जरूरत है। दरअसल शिक्षकों को इस तरह की समस्याओं से निपटने का प्रशिक्षण देने की जरूरत है। इसके लिए यह बेहद जरूरी है कि बच्चों

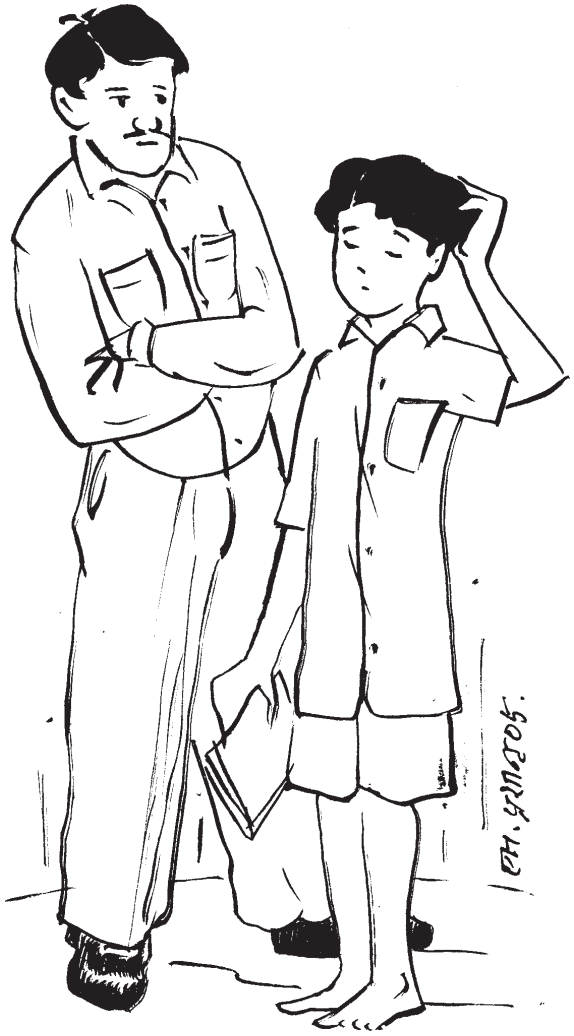

के बारे में पहले शिक्षक यह समझने की कोशिश करें कि आखिर बच्चा कितना जानता है और उसको कितना जानने की जरूरत है।

छात्रों का आकलन

यह जरूरी है कि बच्चे जो सीखते हैं उसकी गुणवत्ता को लेकर एक विस्तृत रपट बनाई जानी चाहिए। और मूल्यांकन के नए मानकों की तलाश करते रहना चाहिए। बच्चों की किसी खास विशेष विषय में प्रदर्शन में आकलन के अलावा उसमें सीखने के प्रति रुख, रूचियों और स्वतंत्र रूप से सीख पाने की क्षमता का भी आकलन होना चाहिए।

मूल्यांकन का मतलब ये तो नहीं...

- बच्चों को दबाव में अध्ययन करने के लिए बाध्य करना मूल्यांकन का मकसद नहीं होना चाहिए।
- बच्चों को इस आधार पर टोकना कि तुमको कुछ नहीं आता है। तुम तो बहुत धीमे हो, तुम तो समस्यादायक बच्चे हो या तुम तो बहुत होशियार हो आदि। यदि बच्चे नहीं सीख पाते हैं तो उसकी जिम्मेदारी उन पर ही डालना शिक्षण शास्त्र के मूल सिध्दांतों के खिलाफ है।

रिपोर्ट कार्ड तैयार करने से शिक्षक को अपने ही छात्र के बारे में जानकारी मिलती है कि उस सत्र में उसने क्या किया और किसी क्षेत्र में उसमें सुधार की जरूरत है। इसके लिए जरूरी है कि शिक्षक रोजाना हर बच्चे से मुखातिब हो। और हर छात्र की एक दैनिक डायरी बने जिससे रिपोर्ट कार्ड बनाने में मदद मिल सके। आकलन के जरिए बच्चों की सीखने की समस्याओं को समझने में मदद मिलनी चाहिए। शिक्षक परीक्षा के दौरान उन समस्याओं को नहीं समझ सकता बल्कि शिक्षण के दौरान ही एक शिक्षक उसकी समझ बना सकता है और उसकी समझ बना सकता हैं।

पाठ्यचर्या के वो क्षेत्र जिनको अंकों से नहीं जांचा जाता

पाठ्यचर्या के सभी विषय परीक्षा द्वारा नहीं जांचे जा सकते। यह पाठ्यक्रम क्षेत्र में सीखने की प्रकृति की विरोधात्मक प्रक्रिया भी है। इनमें संगीत, शारीरिक शिक्षा, कला आदि आते हैं। वर्तमान में इनको पाठ्यक्रम में कम महत्व दिया गया है। इनको न तो ठीक से समय दिया जाता है और न ही साधन उपलब्ध करवाए जाते हैं।

पाठ्यचर्या के उपरोक्त क्षेत्र सामग्रियों के अभाव में और पाठ्यक्रम योजना ठीक से न बन पाने के कारण उपेक्षित

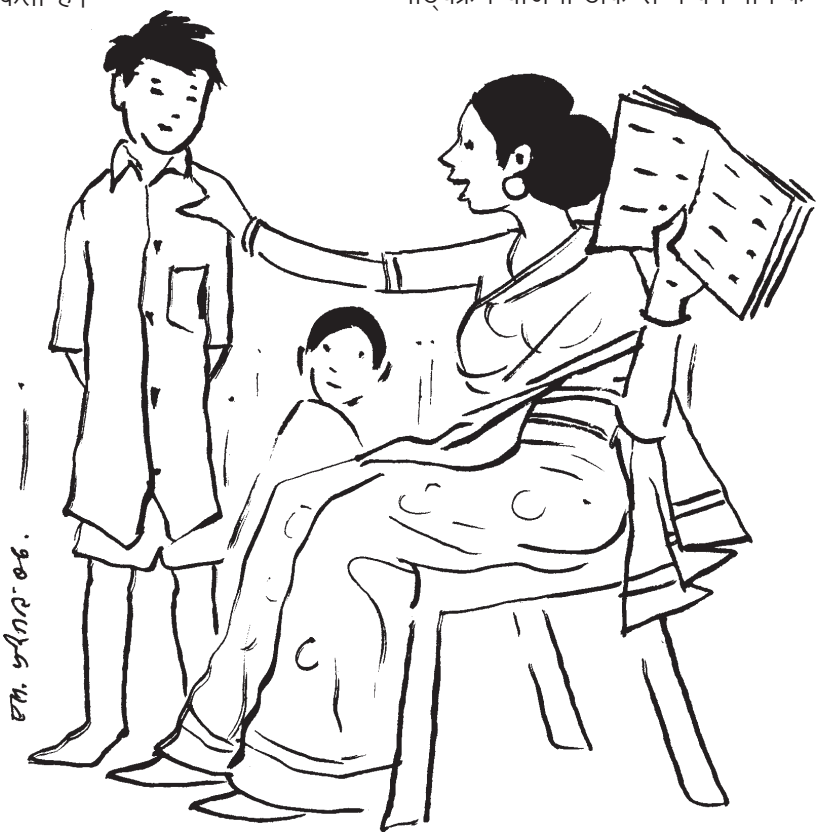

रहे हैं। समस्या इस बात की है कि स्कूल में इन विषयों का समय तो निर्धारित किया जाता है लेकिन व्यवहारिक रूप में इन विषयों के शिक्षण को नजरंदाज किया जाता रहा है। हांलाकि इन विषयों को अंकों से नहीं आंका जा सकता लेकिन भागीदारी, रुचि और जुड़ाव के स्तर आदि से आकलन किया जा सकता है। ये वो आयाम हैं जिनकी मदद से शिक्षक समझ सकता है कि बच्चे इनको कितना सीख पा रहे हैं।

आकलन कैसे करें?

जब तक परीक्षा में बच्चों की रटने की क्षमता का परीक्षण किया जाता रहेगा तब तक बच्चों को सीखने की प्रक्रियाओं से बेदखल किया जाता रहेगा। और इस तरह के सारे प्रयास बेकार साबित होंगे। आकलन इस प्रकार का हो कि छात्र चिंतन प्रक्रिया को अपना सके। साथ ही जानकारी प्राप्त करने के तरीकों और उसके उपयोग और उनके विश्लेषण कर सके।

आकलन के लिए जो प्रश्न बनाए जाएं उनका दायरा व्यापक हो। वे पुस्तकीय सीमाओं से कहीं आगे जाने वाले हों और चुनौतिपूर्ण हो। साथ ही प्रश्न ऐसे हों जिनके जवाब देने में बच्चे खुलापन महसूस करें। प्रश्न इस प्रकार के हों कि वे छात्रों में आत्मविश्वास का विकास करें। प्रश्न किताब के पीछे दिए जाते हैं उससे अलग हो। खुली किताब परीक्षा प्रणाली एक चुनौतिपूर्ण कदम है। खुली किताब परीक्षा प्रणाली के लागू करने का अर्थ यह है कि सीखने के तरीकों और विश्लेषण पर जोर दिया जाए। इस प्रक्रिया में प्रश्न निर्माण एक चुनौतिपूर्ण बन जाता है। ऐसे उदाहरण हैं जहां पर खुली परीक्षा प्रणाली अपनाई गई, उनके बेहतर नतीजे आए हैं। महत्वपूर्ण यह भी है कि जांची गई उत्तरपुस्तिकाओं को देखने के बाद बच्चे अपने उत्तर फिर से लिखें और शिक्षक उनको फिर से जांचे और यह समझने के कोशिश करें कि आखिर बच्चों ने क्या सीखा है।

प्रतियोगिता बनाम आतंक

ऐसा माना जाता है कि प्रतियोगिता प्रेरणा देती है। लेकिन यह प्रेरणा कई बार कुंठा पैदा करती है। चूंकि

यह आसान विधि है इस कारण से शिक्षक इसको अक्सर अपने बच्चों पर अपनाते हैं। यह अफसोस की बात है कि पूर्व प्राथमिक स्तर पर ही बच्चों को श्रेणी में बांटना प्रारंभ कर दिया जाता है। लेकिन यह श्रेणी विभाजन जो कि प्रतियोगिता का ही एक रूप है और उन पर नकारात्मक प्रभाव डालती है। इसका पूरी कक्षा पर गलत प्रभाव पड़ता है। इस तरह की मानसिकता बच्चों को समूह में काम करने से रोकती है। परीक्षाओं को ज्यादा महत्व देने, निरीक्षण और गोपनीयता की सख्त व्यवस्था करके सीखने की प्रक्रियाओं को और कुंद किया जाता है।

स्व–आकलन और फीडबैक

पढ़ाई में सुधार के लिए फीडबैक मिलता रहे और इस आधार पर मूल्यांकन की प्रक्रिया निरंतर चलती रहनी चाहिए।

उत्तरपुस्तिकाओं की जंचाई और नतीजे तैयार करने की प्रक्रिया में इस तरह की पारदर्शिता हो कि उनके बारे में बच्चों को पता हो। इससे बच्चों ने क्या गलती की है इसके बारे में उनको पता चलेगा। बच्चों को इस बात के लिए प्रेरित करें कि वे अपने बारे में बताने की कोशिश करें कि वे क्या जानते हैं और क्या नहीं। शिक्षक की भूमिका हर बच्चे को अवसर प्रदान करने की होनी चाहिए ताकि बच्चे अपनी क्षमता के अनुसार सबसे अच्छा सीख सकें और बौध्दिक गुणों, शारीरिक स्वास्थ्य, खेल–कूद की क्षमता, भावनात्मक और सौंदर्यपरक गुणों का विकास कर सकें। रिपोर्ट कार्ड ऐसे हों जो कि अभिभावकों के सामने बच्चे के प्रत्येक क्षेत्र में विकास का संपूर्ण लेखा–जोखा हो। शिक्षक को प्रत्येक बच्चे के बारे में कुछ कहने में समर्थ होना चाहिए। न केवल शिक्षक बल्कि बच्चे भी खुद का आकलन कर सके और इस स्व–आकलन को रिपोर्ट कार्ड में दर्शाया जा सके।

पाठ्यचर्या में कुछ ऐसे विषय भी हैं जिनके आकलन के लिए पर्याप्त उपकरण नहीं है। इनमें वो शिक्षा शामिल है जो समूहों में दी जाती है, ऐसी शिक्षा जो क्षमताओं का विकास करती है आदि।

लगातार और विस्तृत मूल्यांकन ही एकमात्र सार्थक मूल्यांकन पद्धति है।?

परीक्षा के विकल्प

कृष्ण कुमार

पाठ्यपुस्तक को 'पूरा' करने की परिपाटी के साथ परीक्षा में बच्चों को 'पास' कराने की चिन्ता जुड़ी हुई है। अध्यापक पर निरीक्षण अधिकारियों के दबाव का दूसरा प्रमुख बिन्दु परीक्षा ही होती है हालांकि इस बिन्दु पर दबाव बनाने में माता–पिताओं का भी काफी बड़ा योगदान रहता है। हमारे देश की शिक्षा व्यवस्था में परीक्षा का आतंक बचपन से ही शुरू हो जाता है। स्कूल और घर दोनों में यह आतंक बच्चों को झेलना पड़ता है। आतंक की मुख्य वजह परीक्षा के उद्देश्य और चरित्र में छिपी रहती है। परीक्षा का उद्देश्य बच्चों को डराए रखकर पढ़ाई के प्रति गंभीर बनाना होता है। इस उद्देश्य को पाने के लिए परीक्षा 'फेल' होने का डर जगाती है। 'फेल' होने का मतलब होता है शिक्षक, माता–पिता और साथियों की नजरों में गिर जाना, यानी उनकी अपेक्षाओं पर खरा न उतर पाना। इस भीषण मनोवैज्ञानिक आतंक में जीने की आदत परीक्षा–व्यवस्था बचपन से डालना शुरू कर देती है। छोटे छोटे बच्चे इस आदत के वश में आकर सोचने लगते हैं कि स्कूल का असली काम बच्चों को 'पास' और 'फेल' करना है।

इस क्रूर स्थिति को बदलने के लिए कई जगह यह पद्धति अपनाई गई कि प्राथमिक दर्जो में हर बच्चे को अनिवार्य रूप से 'पास' किया जाए। इस तरकीब से

कागजी बदलाव तो हुआ, लेकिन शिक्षक में हर बच्चे की सूक्ष्म प्रगति का लगातार आकलन करते रहने की प्रवृति विकसित नहीं हुई। परीक्षा की पारंपरिक पद्धति में बदलाव का अर्थ इस प्रवृति का विकास ही है। यहां मुख्य सवाल यह उठता है कि छोटे बच्चों के संदर्भ में 'प्रगति' का अर्थ और आधार क्या हो।

भाषा के चार प्रमुख कौशलों की दृष्टि से बच्चों के विकास के जो विभिन्न पहलू सुझाए गए हैं, उन्हें बच्चों की प्रगति आंकने के आधार के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। इनमें से पहले दो कौशलों– बोलना और सुनना– में बच्चे के विकास का आकलन करने के लिए अध्यापक में बच्चों का अवलोकन करने की क्षमता अनिवार्य रूप से होनी चाहिए। इस क्षमता के विकास पर हमारे देश के प्रशिक्षण कार्यक्रमों में कोई जोर नहीं दिया जाता। थोड़े से शिक्षकों में यह क्षमता अनुभव के साथ किसी हद तक आ जाती है, पर वे भी इस क्षमता का व्यवस्थित प्रयोग नहीं करते।

अध्यापकों में बच्चों का अवलोकन करने की क्षमता के विकास के लिए इन बातों या शर्तो को ध्यान में रखना जरूरी है।

- कक्षा की ज्यादातर गतिविधियां समूहों में कराई जाए। एक समूह में चार या पांच बच्चे हों और इस तरह सारी कक्षा स्थायी रूप से आठ–दस छोटे समूहों में काम करे।
- शिक्षक हर समय खुद बोलने और बच्चों पर नियंत्रण करने की इच्छा पर काबू रखकर बच्चों की आपसी बातचीत ध्यान से सुनने की आदत डाले। शुरू में उसे लगेगा कि कक्षा असहनीय रूप से अराजक हो गई है। धीरे–धीरे स्थिति बदलेगी और बच्चे शिक्षक के सतत– नियंत्रण के बिना छोटे समूहों में अपना काम करने के अभ्यस्त हो जाएंगे।
- शिक्षक कक्षा में ऐसा माहौल बनाए जिसमें बच्चे अपनी बात बेझिझक होकर कह सकें।
- हर बच्चे की बोलने और सुनने की क्षमताओं पर शिक्षक सप्ताह या पखवाड़े में एक बार अपनी टिप्पणी लिखे। टिप्पणी लिखने के लिए डायरी या किसी ऐसी स्थायी सूची का प्रयोग किया जा सकता है जिसमें बोलने और सुनने से संबंधित सभी महत्वपूर्ण गुण शामिल किए गए हों। इन गुणों में अपनी शामिल कहने का आत्मविश्वास, प्रश्न पूछने की आदत, मुखरता, दूसरों की बात सुनने में रूचि, सुनने का धैर्य और सुनी हुई बात पर टिप्पणी करना शामिल हैं।

पढ़ने से जुड़ कौशलों के विकास का आकलन करने के लिए भी बच्चों का व्यक्तिगत स्तर या अवलोकन जरूरी है। पढ़ने में दक्षता का क्रमिक विकास किस बच्चे में कितना हुआ है, यह पता लगाने के लिए बच्चों की संख्या को देखते हुए सप्ताह, पखवाड़े या महीने में कम से कम एक बार प्रत्येक बच्चे के साथ अलग से कुछ मिनट शिक्षक को बिताने होंगे जिनमें वह बच्चे का पढ़ना ध्यान से सुन सके। पढ़ने से संबंधित काम के दौरान कक्षा में बच्चों का अवलोकन नियमित चलेगा ही। जिन स्कूलों में बच्चों की संख्या बहुत ही ज्यादा है या जहां शिक्षक की एक साथ दो या अधिक कक्षाओं की जिम्मेदारी लेनी पड़ती है, वहां उपरोक्त व्यवस्थाओं को लागू करना बहुत दिक्कत वाला काम होगा, हम ऐसा मानकर चल सकते हैं।

अंत में, लिखने के कौशल के विकास का आकलन करने के लिए हर बच्चे के काम का रिकार्ड व्यवस्थित रूप से रखना जरूरी है। बच्चे की कॉपी भी एक रिकार्ड है, पर उसे देखते समय शिक्षक प्रायः वर्तनी की अशुद्धियों और अन्य कमियों में इतना खो जाते हैं कि बच्चे की अभिव्यक्ति के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान ही नहीं दे पाते। पाठ्यपुस्तक पर आधारित परीक्षा में भी जोर याद किए गए उत्तरों को 'शुद्ध' लिख देने पर रहता है। इस परिपाटी से मुक्त होना चाह रहे शिक्षकों को याद रखना चाहिए कि लिखना अंततः एक समग्र कौशल है जिसमें वही सारे गुण विद्यमान रहते हैं जो 'बोलने' के अन्तर्गत मौखिक संदर्भ में हमारी चिन्ता का विषय थे।

(कृष्ण कुमार द्वारा लिखित बच्चे की भाषा और अध्यापक से साभार।)

परीक्षाएं और सिर्फ परीक्षाएं

कैरेन हैडॉक

मौजूदा परीक्षा प्रणाली में बच्चों की समझ को जांचने की बजाए उनकी रटंत क्षमता की जांच की जाती है। आपने भी कई बच्चों को सुबह–सुबह चार बजे सवालों के जवाब याद करते हुए देखा होगा। क्या ऐसी परीक्षाओं के माध्यम से बच्चों की समझ को जांचा–परखा जा सकता है?

परीक्षाओं को लेकर सबकी कोई–न–कोई शिकायत रहती ही है। इतनी प्रतिस्पर्धात्मक। कैसे विचित्र सवाल होते हैं। अन्याय और असमानता। जांचने की त्रुटियां। पाठ्यक्रम के बाहर के सवाल। और बच्चे तो पूछते हैं– उन्हें परीक्षा देनी ही क्यों पड़ती है?

लेकिन शिकायत करने वाले अक्सर निराश और जो उन पर गुज़र रही है उसे सहन कर लेने वाले लोग होते हैं। किसी में भी स्थिति को सुधारने की, बदलने की इच्छाशक्ति नहीं। या फिर ये सारी परीक्षाएं आवश्यक कुरीतियां हैं? जिन्हें हम सबको सहन करना ही होगा।

बच्चों के पास खेलने का समय ही नहीं– उनकी ज़िंदगी तो यूनिट टेस्ट, वार्षिक परीक्षा और जैसे कि वे काफी न हो बोर्ड परीक्षा के आतंक एएं अन्य अनगिनत प्रतियोगी परीक्षाओं से नियंत्रित रहती है। कई जगह तो बच्चे अपनी काबिलियत को परीक्षा के परिणामों के आधार पर नापने लगते हैं और पालक भी अपने बच्चों को इन्हीं परिणामों के अनुपात में प्यार करने लगते हैं। इस सबको असर काफी हानिकारक हो सकता है।

संपूर्ण परीक्षा व्यवस्था ने शिक्षा तंत्र को बुरी तरह से जकड़कर रखा है। शालाएं अपना पढ़ाने का तरीका नहीं बदल सकती, न ही पाठ्यक्रम बदल सकती हैं, क्योंकि उनका उद्देश्य है विद्यार्थियों को परीक्षा के लिए तैयार करना। मां–बाप को भी बच्चों को ट्यूशन के लिये भेजना पड़ता है ताकि वे परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त कर सकें। विद्यार्थी स्वयं तो जैसे परीक्षा के लिए सोचना होता है उससे हटकर और कुछ सोच ही नहीं सकते।

रटना बनाम पढ़ना

परीक्षाओं के लिए किस तरह की सोच ज़रूरी होती है? अक्सर केवल 'रटना'। विद्यार्थी उत्तरों को शब्दशः रटते हैं। वे उत्तर जिन्हें वे पाठ्यपुस्तक व श्यामपट से उतारते हैं। अगर कोई उनसे पूछे कि क्या कर रहे हैं तो वे कहेंगे 'पढ़ रहे हैं' या पुनरावृति कर रहे हैं। लेकिन वास्तव में यह एक कहने का तरीका है जिसमें 'रट रहे हैं' कहने के बजाए 'पढ़ रहे हैं' कहा जाता है।

रटना 'पढ़ने' या 'सीखने' के समकक्ष नहीं है– केवल सीखने का एक हिस्सा मात्र है। लेकिन सीखने में इतना कुछ और भी शामिल है– सीखने के इतने पहलू हैं जिन पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया जाता।

याद करने के अलावा ज़रूरी है कि विद्यार्थी चीज़ों को समझें। उन्हें ज़रूरत है कि चीज़ों को करने के रचनात्मक और नए तरीके सोचें। उनमें क्षमता होनी चाहिए कि अपनी समझ और ज्ञान को नई समस्याएं सुलझाने में, इस्तेमाल कर पाएं; किसी घटना को अलग–अलग दृष्टिकोण से आंककर उसके बारे में मन बना पाएं और समस्याओं का विश्लेषण करके उन्हें हल करने के नए रचनात्मक तरीके सोच पाएं।

लेकिन अधिकांश परीक्षाओं में इस क्षमता को नहीं जांचा जाता। हम अपनी वर्तमान परीक्षा प्रणाली में फंसे हैं जो कि विद्यार्थियों को रटने के अलावा कुछ भी और करने से हतोत्साहित करती है। और रटना हर चीज़ में लागू किया जाता है– बगैर सोचे कि कुछ जगहों यह उपयुक्त होता है (जैसे पहाड़े याद करने पड़ते हैं) और कुछ जगह यह बिल्कुल उपयुक्त नहीं है– जैसे विज्ञान समझने में, आदि।

किसी ने परीक्षा की दिक्कतों के बारे में गहराई से सोचा हो, गूढ विश्लेषण किया हो, बहुत कम ही सुनने को मिलता है। कुछ कम ही सुनने को मिलता है। कुछ लोग बढ़ती जनसंख्या को दोष दे देते हैं, कुछ अंग्रेजों की विरासत कहकर उसके बारे में फिर सोचते ही नहीं। या फिर इस तरह के जुमले सुनने को मिलते हैं– 'इस व्यवस्था में इतनी प्रतिस्पर्धा इसलिए है क्योंकि बेरोज़गारों की अपेक्षा नौकरियां कम हैं। इसके बारे में हम क्या कर सकते हैं? जो विद्यार्थी अंग्रेजी अच्छे से नहीं जानता वह भोगेगा क्योंकि अंग्रेजी आज के दौर में अत्यंत ज़रूरी है। उसके बारे में भी कुछ नहीं कर सकते।'

असल में परीक्षा प्रणाली ऐसी ही है क्योंकि इससे एक उद्देश्य पूरा हो रहा है बल्कि ऐसा कहिए कि बहुत ही अच्छी तरह पूरा हो रहा है। इससे छंटाई हो रही है– वे चंद योग्य विद्यार्थी छंट रहे हैं जो समाज के उस तबके की अगली पीढ़ी बनेंगे जो समाज का नेतृत्व करती है; जो समाज की सीढ़ी पर सर्वोपरि स्थान ग्रहण करते हैं।

परीक्षा और समाज का ढांचा

इस परीक्षा प्रणाली को बदलने से समाज की इस सीढ़ीदार संरचना के टूटने का खतरा हो सकता है। इसी कारण, यह तब तक नहीं बदल पाएगी जब तक वे लोग इसकी मांग न करें जो इससे पीड़ित हैं।

उदाहरण के लिए, हम चाहते हैं कि मेडिकल की परीक्षा कम प्रतिस्पर्धात्मक हो। इसका अभिप्राय है कि हम मेडिकल के विद्यार्थियों की संख्या बढ़ाना चाहते हैं– डॉक्टरों की संख्या बढ़ाना चाहते हैं। लेकिन ये डॉक्टरों के हित में नहीं है क्योंकि जहां डॉक्टरों की संख्या बढ़ी, उनके रहन–सहन का स्तर गिर जाएगा। इससे सामाजिक सीढ़ी पर उनकी जगह काफी नीचे आ जाएगी।

इसलिए असली चर्चा इस स्तर पर होनी चाहिए कि हम किस तरह का समाज चाहते हैं– क्या ऐसा जिसमें एक छोटा समूह धन, स्वास्थ्य, सत्ता आदि पर कब्ज़ा जमाए रहता है या ऐसा समाज जो सभी लोगों के लिए अच्छी स्वास्थ्य सेवाएं देने की जिम्मेदारी उठाता है।

क्या हम वास्तव में ऐसा समाज चाहते हैं जो रचनात्मक लेखन, वैज्ञानिक सोच, समान खाद्यान्न वितरण, और पर्याप्त स्वास्थ्य सुविधाओं को प्रोत्साहन देता हो? तो फिर हमारी शिक्षा प्रणाली भी ऐसी होनी चाहिए जो रचनात्मक सोच को बढ़ावा दे, जो प्रयोगधर्मिता को प्रोत्साहित करे, जो लोकव्यापी हो, जो समानतामूलक शिक्षा पर ज़ोर दे।

अगर परीक्षा प्रणाली को रटंतू से बदलकर ऐसा बना दिया जाए कि विद्यार्थियों की समझ के स्तर, नई समस्याओं का विश्लेषण कर पाने की क्षमता, समीक्षात्मक सोच और विश्लेषण आदि का मूल्यांकन हो– तो वो

मौजूदा व्यवस्था के लिए खतरा बन जाएगी। आखिर आम जनता की रचनात्मक क्षमताओं और सोच को बौना बनाए रखना सत्ताधारियों के हित में ही तो है।

शायद ये प्रणाली बदल जाएगी जब सत्ताधारी यह समझने लगेंगे कि विद्यार्थियों को सोचना सिखाने से शायद उनकी अपनी स्थिति भी सुधरेगी। तब शायद वे ऐसी दोहरी प्रणाली बना लेंगे जिसमें साधारण लोग तो रटकर याद करते रहें; और अंग्रेजी बोलने वाली उच्च श्रेणी को और ऊंचे स्तर पर सोचना सिखाया जाए। इसके आसार नज़र आने भी लगे हैं। गैर सरकारी अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूलों और नज़र अंदाज़ किए गए सरकारी स्कूलों की तुलना कीजिए। क्या गैर सरकारी स्कूलों पर प्रतिबन्ध लगा देना ही एक मात्र तरीका है सरकारी स्कूलों को सुधारने का, इन दोनों के बीच की बढ़ती खाई को बढ़ने से रोकने का?

लेकिन आज भी बहुतेरे अत्यंत रचनात्मक लोग ऐसे हैं जो शिक्षा प्रणाली से नहीं गुज़रे– जिन्होंने इन परीक्षाओं को उत्तीर्ण नहीं किया। इन्हें खुद को अभिव्यक्त करने के, और बाकी दुनिया से संवाद करने के बहुत कम मौके मिले हैं। हमें आज ज़रूरत है ऐसी व्यवस्था की जो हर इन्सान को विकसित होने की, खुद को अभिव्यक्त करने की और अपनी व्यक्तिगत और सामाजिक रूचियों को बढ़ावा देने की इजाज़त दे, जगह दे।

परीक्षाएं बदली कैसे जा सकती हैं?

– यदि परीक्षा हो ही न तो? कभी–कभी परीक्षा ज़रूरी भी नहीं होती किसी और तरह से आंकना ज्यादा ठीक रहता है। उदाहरण के लिए किसी रचनात्मक लेख या पेंटिग का मूल्यांकन करना।

– कहीं–कहीं परीक्षा की उपयोगिता नज़र आती है। विद्यार्थियों को व औरों को भी एक अंदाजा लग जाता है कि उनकी उपलब्धियां क्या हैं, उनके समझने का स्तर क्या–क्या है। इससे उन्हें आगे की पढ़ाई की योजना बनाने में, व्यवसाय चुनने में मदद मिलती है। लेकिन मूल्यांकन के और भी तरीके हो सकते हैं।

– यदि शिक्षकों के सुझाव और टिप्पणियों का उपयोग किया जाए तो? यदि शिक्षक हर विद्यार्थी के बारे में अच्छे से सोचकर एक समीक्षात्मक विवरण लिखे जिससे कि उसकी उपलब्धियों और विशेषताओं के बारे में पता लगे, तो क्या वह महज़ 87 प्रतिशत, 55 प्रतिशत लिखने से ज्यादा सार्थक न होगा?

– यदि खुली किताब परीक्षाएं हों तो? विद्यार्थी परीक्षा में अपनी किताबों व कॉपियों का भी प्रयोग कर सकें। फिर सवाल इस प्रकार के होंगे कि वे सीधे–सीधे किताबों से नकल करके उत्तर न लिख पाएं; बल्कि किताब में दी गई जानकारी की मदद से वे नए सवालों को हल करने की कोशिश करे। (नीचे कुछ उदाहरण दिए गए हैं।)

– मौखिक परीक्षाएं, चर्चाएं, इंटरव्यू के बारे में क्या विचार हैं? कहीं–कहीं उनकी उपयोगिता ज्यादा लगती है। उदाहरण के लिए, एक विद्यार्थी से पांच मिनट बात करके शिक्षक आसानी से बता सकता है कि उसे व्याकरण की कितनी पकड़ है, क्या वह किसी भाषा में सही वाक्य बना सकता है या नहीं।

– क्या परीक्षाओं का इस्तेमाल 'याद्दाश्त' से भी ज्यादा कुछ जांचने में हो सकता है? इन परीक्षाओं से कुछ और ऊंचे स्तर की चीज़ें जैसे समीक्षात्मक चिंतन जैसी दक्षताओं को कैसे आंकेंगे?

नीचे दिए गए सवालों के उदाहरण देखिए। हर जगह पहला सवाल पुराने साधारण तरीके से पेश किया गया है। फिर उसी विषय को आंकने के लिए एक और सवाल दिया है जिसमें कहीं अधिक सोचने की आवश्यकता है।

रसायन एवं गणित

1. पीतल निम्नलिखित में से किसी एक का मिश्रण है–

(क) 70 प्रतिशत तांबा और 30 प्रतिशत जस्ता

(ख) 35 प्रतिशत जस्ता और 65 प्रतिशत तांबा

(ग) 65 प्रतिशत तांबा और 35 प्रतिशत सीसा

(घ) 38 प्रतिशत जस्ता और 62 प्रतिशत तांबा

2. पीतल एक मिश्रधातु है। धातुओं के मिश्रण को मिश्रधातु कहते हैं। पीतल 65 प्रतिशत तांबा और 35 प्रतिशत जस्ते के मिश्रण से बनता है। कौन–सा चित्र इसको सबसे स्पष्ट दर्शाता है?

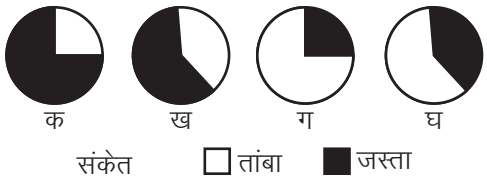

पहला सवाल सिर्फ याद्दाश्त को जांचता है। दूसरा सवाल कुछ जानकारी देता है और जानकारी को समझने को कहता है। इसमें विद्यार्थी को ज़रूरत है पहले सीखी हुई क्षमता, यानी इस तरह के चित्रण को समझने का इस्तेमाल करे। इसमें दी हुई जानकारी को समझना, नक्शा पढ़ने की क्षमता संकेत सूची पढ़ने के लिए, प्रतिशत और भिन्न की समझ, आकारों में तुलना करके अनुमान लगाना, समझना कि 25 प्रतिशत एक चौथाई होता है, 35 प्रतिशत एक तिहाई से थोड़ा ज्यादा होता है आदि, सभी की जांच होती है। तो दूसरा सवाल वास्तव में ज्यादा चीजें जांच रहा है। सबसे ज़रूरी बात यह है यह विद्यार्थियों की सोचने की क्षमता को जांच रहा है।

इससे अभिप्राय यह नहीं है कि याद करना महत्वपूर्ण नहीं है। कई चीज़ें याद भी करनी पड़ती हैं। लेकिन खुद से ये सवाल भी करना चाहिए कि उदाहरण के लिए यह याद रखना कितना ज़रूरी है कि पीतल में कितना तांबा और कितना जस्ता मिला होता है। शायद यह समझना/सीखना ज्यादा सार्थक होगा कि ऐसी जानकारी ढूंढ़ने के लिए पुस्तकालय का उपयोग कैसे कर सकते हैं। और वहां यदि किसी पुस्तक में ऐसे ग्राफ बने हों तो उन्हें पढ़कर कैसे समझ सकते हैं।

भूगोल

1. नक्शा क्या है?
   जवाब– पृथ्वी की सतह को छोटे रूप में समतल सतह पर दिखाया जाए तो उसे नक्शा कहते हैं।
2. अपने एटलस के विभिन्न नक्शों को देखकर पता लगाओं कि गंगा नदी कौन–कौन से राज्यों से होकर समुद्र में मिलती है?

विद्यार्थी के लिए पहले सवाल का सही उत्तर केवल याद्दाश्त के आधार पर बिना हिज्जे की गलतियां किए, बिना ये समझे भी कि नक्शा वास्तव में क्या चीज़ है, देना संभव है। लेकिन अगर कोई विद्यार्थी दूसरे सवाल का उत्तर दे सकता है तो उससे यह भी साबित होगा कि उसे मालूम है नक्शा क्या है, क्योंकि उसे नक्शा इस्तेमाल करना आता है। शायद इसके लिए उसे कुछ राज्यों के नाम भी रटने पड़ें (यदि नक्शे पर नाम नहीं लिखे हों तो) लेकिन वह सिर्फ याद रखने से कहीं ज्यादा कर रहा है। उसे संकेत सूची पढ़ने की आवश्यकता हो सकती है, उसे नक्शा देखकर समझना पड़ सकता है कि नदी किस ओर बह रही है आदि।

अंग्रेज़ी

1. टॉम सॉयर को (स्कूल में) अपनी कक्षा में ——— पसंद था। उसका सबसे अच्छा दोस्त ——— था।
2. कल्पना करो कि टॉम सॉयर आज के ज़माने में रहने वाला एक भारतीय है और तुम्हारे शहर में रहा रहा है, न कि उन्नीसवीं सदी में मिसिसिपी नदी के किनारे। उसकी ज़िन्दगी कैसे फर्क हो जाएगी? मान लो उसका नाम राम सॉयर है और वह तुम्हारे स्कूल जाता है। जिस पाठ में टॉम सॉयर की दिक्कतों के बारे में लिखा है उसे भारतीय संदर्भ में पुनः लिखो।

ज़ाहिर है, पहले प्रश्न की तुलना में दूसरे प्रश्न में बहुत कुछ पूछा जा रहा है। पहले प्रश्न का उत्तर देने के लिए पात्रों के नाम याद रखना ज़रूरी था। बहुत ज्यादा कुछ समझने की जरूरत नहीं। दूसरे सवाल का उत्तर देने के लिए याद्दाश्त के साथ–साथ विद्यार्थी को अपनी रचनात्मकता और विश्लेषण की क्षमताओं को दिखाने का मौका मिलता है। कुछ लोगों को यह मुश्किल लग सकता है। लेकिन क्या वाकई इतना मुश्किल है यह?

शायद कुछ शिक्षकों ने बच्चों से वाक्य रटने की बजाए अपने शब्दों में लिखने को कहा होगा और पाया होगा कि वे हिज्जों में, व्याकरण में, वाक्य संरचना में बहु गलतियां करते हैं। फिर भी, रचनात्मक और विश्लेषणात्मक पहलुओं को अलग से क्यों न देखा जाए? यदि हिज्जे

और व्याकरण पर ज्यादा ध्यान न दें, तो मुझे यकीन है कि हम पाएंगे कि बच्चे खुद से सोच सकते हैं। और इसे शुरू से ही प्रोत्साहन देने की ज़रूरत है वरना यह क्षमता हमेशा के लिए खत्म हो जाएगी। और फिर रटने से तो बच्चे कभी भी वाक्य संरचना नहीं सीख जाएंगे। सीखने के लिए उन्हें खुद से लिखना होगा, गलतियां करनी होंगी, खुद सुधारनी होंगी, अभ्यास करना होगा।

विज्ञान

1. दूध को ज्यादा समय तक सुरक्षित रखने के लिए इस्तेमाल होनेवाली विधि को ——— कहते हैं?

2. आठ डिब्बे लो और उन पर 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7, 8 संख्या लिख दो। डिब्बा क्रमांक 1, 2, 3, 4 में बिना उबला, ताजा दूध लो। डिब्बा क्रमांक 5, 6, 7, 8 में गर्म उबला हुआ दूध लो। सब डिब्बों को ढक दो। डिब्बा क्रमांक 1 व 5 को फ्रीज़र में रखो 2 एवं 6 फ्रिज में, 3 एवं 7 को अलमारी में, और 4 और 8 को ऐसी जगह जहां धूप आती हो।

   24 घंटे बाद सब डिब्बों को खोलकर सूंघो– क्या कोई खट्टा हो गया है? यदि नहीं तो और 24 घंटों के लिए इन्हें वापस रख दो, फिर सूंघो, जब तक दूध खट्टा न हो जाए ऐसा करते रहो।

   अपने अवलोकन तक तालिका में लिखकर स्तंभालेख के माध्यम सेदिखाओ कि हर एक डिब्बे के दूध को खट्टा होने में कितने दिन लगे। अपने नतीजों के आधार पर बताओ कि दूध को लम्बे समय तक ठीक रखने का सबसे अच्छा तरीका क्या है? क्या इस प्रयोग को किसी और विधि से बेहतर ढंग से किया जा सकता है?

   पहले सवाल का उत्तर देने में विद्यार्थी को मात्र

एक शब्द की परिभाषा याद करनी है, इसे समझना भी ज़रूरी नहीं।

दूसरे प्रश्न के लिए उसे कम से कम दो दिन आधा–आधा घंटा विज्ञान को करने में लगाना पड़ेगा। लेकिन इस अनुभव को वे शायद ही भूलेंगे। वे 'दूध परीरक्षण' के अर्थ के अलावा भी कई चीज़े सीखेंगे। वे सीखेंगे विज्ञान क्या है– सिर्फ जानकारियों/तथ्यों की सूची नहीं जिसे रटना पड़ता है। उन्हें वैज्ञानिक तरीका समझ में आएगा– प्रश्न करना, परिकल्पना बनाना, प्रयोग करना, अवलोकन करना, और नतीजे तक पहुंचना। शिक्षक को समझ में आएगा कि क्या विद्यार्थी बारीकी से अवलोकन कर पा रहा है, क्या उसे ग्राफ बनाना आता है, क्या वह आंकड़ों का विश्लेषण कर खुद नतीजे तक पहुंच सकता है?

खुली किताब परीक्षा

खुली किताब परीक्षा का उल्लेख राष्ट्रीय पाठ्यचर्या में भी किया गया है। खुली किताब परीक्षा का सरल सा मतलब तो यह होता है कि परीक्षा में किताब ले जाने की छूट। खुली किताब परीक्षा को लेकर एक गलत फहमी यह है कि यदि परीक्षा कक्ष में किताब ले जाने देने की छूट होती है तो फिर तो बच्चे तो नकल कर लेंगे। लेकिन सच्चाई कुछ और ही है। खुली किताब परीक्षा में यह बात काफी अहम हो जाती है कि जो प्रश्न पूछे जाते हैं उनके जवाब किताब में से सीधे–सीधे नहीं मिलने चाहिए। जो प्रश्न पूछे जाते हैं वे रटी हुई जानकारी को परखने के बजाए किसी अवधारणा की समझ को जांचने के लिए बनाए जाते हैं। खुली किताब परीक्षा का मकसद यह होता है कि जिन अवधारणाओं से संबंधित प्रश्न पूछे जाते हैं उनको अन्य परिस्थितयों में कैसे लागू किया जा सकता है।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह कि खुली किताब परीक्षा में किताब के पीछे जो प्रश्न दिए जाते हैं उनमें से नहीं होते। इतना ही नहीं जो छात्रों की कॉपी होती है उसमें से भी प्रश्न नहीं होते। जब हम खुली किताब परीक्षा की बात करते हैं तो परीक्षक के सामने बड़ी भारी चुनौती होती है कि प्रश्न ऐसे बनाएं जो अवधारणाओं की समझ को ठीक से जांच सकें।

यहां जो चर्चा की जा रही है ये कल्पना के घोड़े दौड़ाने जैसी बात नहीं है। खुली किताब परीक्षा के उदाहरण हमारे यहां की शिक्षा व्यवस्था में घटित हुए हैं। म.प्र. में चलाए गए होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में छात्रों को खुली परीक्षा की छूट थी। इसमें छात्रों को परीक्षा में किताब और अपनी कॉपी ले जाने की छूट होती थी। उल्लेखनीय है कि यह कार्यक्रम प्रदेश की सरकारी स्कूलों में चलाया जा रहा था। इसके लिए प्रदेश के शिक्षा विभाग ने खुली किताब परीक्षा की छूट दी थी। इस कार्यक्रम में छात्रों को रटने के बजाए समझ पर ही जोर था। जैसे कि यदि बच्चों को पौधे के अध्ययन का ज्ञान है तो उसको कोई भी पौधा दे दिया जाए वो उसका अध्ययन कर सकता है। असल में सच्ची परीक्षा तो यही है। होशंगाबाद विज्ञान की परीक्षा में छात्रों को ऐसे मौके दिए जाते थे कि उनमें कौशलों का विकास हो सके उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हो साथ ही वैज्ञानिक प्रक्रिया से जानकारी प्राप्त करने और तार्किक विवेचन के तरीकों में कितनी कुशलता पा ली है। जांच इस बात की भी की जाती थी कि छात्रों को मूलभूत अवधारणाएं कहां तक स्पष्ट हुई है। दरअसल परीक्षा भी इन समस्त कौशलों को परखने के लिए की जाती थी।

खुली किताब परीक्षा मे किस तरह के प्रश्न पूछे जाते हैं, इसका एक उदाहरण यहां प्रस्तुत है–

नीचे बनी तालिका में चार पदार्थों के बारे में जानकारी दी है–

क्र.	पदार्थ	पानी में घुलता है?	उर्ध्वपातन होता है?
1.	नौसादर	हां	हां
2.	कपूर	नहीं	हां
3.	नमक	हां	नहीं
4.	रेत	नहीं	नहीं

(अ) कपूर और नौसादर के मिश्रण में से दोनों को अलग–अलग कैसे करोगे?
_____

(ब) कपूर, नौसादर, नमक और रेत के मिश्रण में से चारों पदार्थों को अलग–अलग कैसे प्राप्त करोगे?
_____

मूल्यांकन कैसा हो?

1. मूल्यांकन या आकलन समग्र होना चाहिए। इसमें सीखने–सिखाने से सम्बन्धित हर पहलू शामिल होना चाहिए, न कि मात्र सीखने वाले।

2. मूल्यांकन से हमें शिक्षार्थी व शिक्षक की क्षमताएं व कमज़ोरी दोनों समझने में मदद मिलनी चाहिए और तदनुसार शिक्षण सामग्री व कार्यक्रम के नियोजन में मदद मिलनी चाहिए।

3. मूल्यांकन ऐसा न हो कि शिक्षार्थी डर जाए। उसे अपने बचाव का पूरा अवसर मिलना चाहिए। मूल्यांकन पीड़ादायक नहीं, खुशनुमा और दोस्ताना प्रक्रिया होनी चाहिए।

4. एकमुश्त सालाना इम्तहान प्रणाली भयावह बन ही जाती है। समय–समय पर विभिन्न सामान्य गतिविधियां, सामूहिक चर्चा, घर पर करने के कार्य आदि मूल्यांकन के आधार बनने चाहिए।

5. मूल्यांकन का मकसद बच्चों को रोकना नहीं होना चाहिए। सतत् मूल्यांकन पाठ्यक्रम में निहित फीड़बैक का आधार बन सकता है।

6. बच्चे का मूल्यांकन हमेशा किसी बाहरी कसौटी के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए। मूल्यांकन का आधार उसका अपना विगत प्रदर्शन और पूरी कक्षा का प्रदर्शन होना चाहिए।

7. कई बच्चे किसी एक पहलू में 'कमज़ोर' होते हैं मगर हो सकता है कि वे किसी अन्य पहलू में मज़बूत साबित हों। कोई बच्चा/बच्ची अगर समस्याएं सुलझाने में सिद्धहस्त हो सकता/सकती है तो कोई अन्य चित्र बनाने या कहानी कहने में।

8. मूल्यांकन के लिए जो गतिविधियां चुनी जाएं वे आमतौर पर कक्षा में की जाने वाली गतिविधियों से अलग तो हों, मगर उसी स्तर और उसी किस्म की हों।

(एकलव्य द्वारा चलाए गए प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के मेन्यूअल से साभार)

डा. नगेंद्र नागपाल की ओर से विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र, जयपुर से संपादित, एवं प्रकाशित।